ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-3* Issue-1*February- 2018
Innovation The Research Concept

विद्यानिवास मिश्र के निबंधों की अन्र्तवस्तु

सारांश

अन्र्तवस्तु हिंदी साहित्य का अपना विकसित और परिभाषिक शब्द है। यह साहित्य का अंतरंग अर्थात् उसका बोधपक्ष है। साहित्य सृजन में अन्र्तवस्तु सही अर्थों में रचना को रचनात्मकता प्रदान करते हैं और वे ही अपने सम्पूर्ण स्वरूप में सम्प्रेषण के माध्यम बनते हैं। इसलिए रचना में अन्र्तवस्तु के महत्व का विवेचन आवश्यक हो जाता है। अन्र्तवस्तु पद्य और गद्य के विविध विधाओं के उस भाग को कहते है, जिसमें मूल कथा–भाग, काव्य–वस्तु, इतिवृत या तथ्य के साथ समबद्ध वे समस्त घटनाएँ या संवेदनात्मकता भी आ जाती है, जिसमसे मिलकर साहित्य–विषय की विषय–वस्तु बनती है। पं0 विद्यानिवास मिश्र का व्यक्तित्व बहुआयामी है। मिश्र जी एक प्रतिभासम्पन्न निबंधकार हाने के साथ–साथ कवि सम्पादक और अनुवादक भी है। मिश्र जी का अपने परिवेष परम्परा और भारतीय संस्कृति के साथ अतिशय लगाव है। उनके निबंधों में हमें उनका यह लगाव हमेशा देखने को मिलता है। मिश्र जी के निबंधों की अन्र्तवस्तु भी अपने परिवेश और सम–सामयिकता में पूर्ण–रूपेण आप्लावित है। एक तरफ भारतीय संस्कृति के विशाल वैभव ने उन्हें कुरेदा है तो दूसरी तरफ लोक–जीवन की असीम सहानुभूति ने अपना संस्पर्श प्रदान किया है।

मुख्य शब्द : सामाजिक संदर्भ, सांस्कृतिक संदर्भ, राजनीतिक संदर्भ, धार्मिक संदर्भ।

सुलक्षणा तिवारी
शोधछात्रा,
हिन्दी विभाग,
वर्धमान विश्वविद्यालय,
मिदनापुर,पश्चिम बंगाल

प्रस्तावना

'वस्तु'शब्द का प्रयोग साहित्य–समीक्ष के क्षेत्र में भारतीय काव्यशास्त्र में अति प्राचीन है। 'वस्तु' शब्द संस्कृत के 'वस' धातु में उसादि प्रत्यय 'तनु' लगने से निष्पन्न होता है। 'वस्तु' का सीधा अर्थ होता है चीज, सही अर्थों में रहने वाली कोई भी बात।"[1] भरतमुनि के 'नाट्य शास्त्र' में नाटकों के तत्व–विवेचन के प्रसंग में 'वस्तु' को प्रधान तत्व माना गया है, जिसका आधुनिक शब्दावली में कथावस्तु, अंतर्विषय, काव्यानुभूति, नाट्य–वस्तु, विषय–वस्तु, निहितार्थ आदि से है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत प्रपत्र का उद्देश्य हिन्दी के प्रसिद्ध निबन्धकार पं0 विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में समाहित अन्र्तवस्तु की चर्चा करना है।

अन्र्तवस्तु की अर्थान्तरित भ्रामक और उलझनपूर्ण स्थितियों से निपटने के लिए 'अन्र्तवस्तु' के बदले 'वस्तु' काव्यानुभूति के बदले काव्यवस्तु, कथानक के र्प्याय में कथावस्तु या कथ्य, अन्तरनिहित भाव के बदले भाव पक्ष, रचनात्मक बोध के बदलने शोधपत्र नाट्य वस्तु के लिए नाट्य संवेदना तथा पाश्चात्य साहित्य में कन्टेन्ट्स या प्लॉट आदि शब्दों का प्रयोग होता आया है।

इस प्रकार रचना की अन्र्तवस्तु का अभिप्राय रचना में संपेषित 'वस्तु' से है। जिसके अन्तर्गत रचनाकार का समग्र बोध कथ्य, अनुभव, संवेदना अनुस्भूत हैं इसमें चिन्तन, कल्पना, प्रत्यय, नाद–लय, अनुभूति, भाव, संवेदनीयता और भाषा–तत्व के प्रायः सभी रचनात्मक अंश सम्मिलित हो जाते हैं। अन्र्तवस्तु रचना के सम्प्रेणषण के संदर्भ में एक ठोस और मूल्यपरक शब्द है, जिससे रचनाकार की कृति को उजागर किया जा सकता है। कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, महाकाव्य, खंण्डकाव्य आदि साहित्य रूपों के साथ–साथ संस्मरण, रेखाचित्र, आत्मकथा, डायरी, निबंध यात्रावृत, रिपोतार्ज आदि कतिपय ऐसी विधाएँ हैं, जिन्होंने अपनी विकास–यात्रा के दौरान कथ्य तथा शिल्प दोनों ही दृष्टियों से अनेक तेवर बदले हैं आज ये विधाएँ इस स्थिति में पहुँच गई है कि साहित्य की अद्यतन प्रवृत्तियों का जायजा लेने वाले हर पाठक के लिए इनसे अपनी पहचान स्थापित करना जरूरी हो गया है। यह साहित्य अनुभूति की प्रमाणिकता पर बल देने वालों के लिए तो काम का है ही क्योंकि इस विधाओं के लेखकों ने अपने देखे–भोगे जीवन के आधार पर ही जीवन के विविध पक्षों का अनाविल चित्र

प्रस्तुत किया है पर साथ ही उन लोगों के लिए भी बड़े काम का है। जो साहित्य की प्रासंगिकता उसके समाजिक सन्दर्भों या सरकारों में खोजने के लिए उत्सुक है। इसीलिए रचना की अन्तर्वस्तु का महत्व बढ़ जाता है क्योंकि लेखक या पाठक रचना के अन्तर्वस्तु में जीवन के विविध पक्षों और उसके सामाजिक सन्दर्भों का सरोकारों की प्रतिष्ठित करते हैं या खोजते हैं।

अन्तर्वस्तु के अन्तर्गत रचनाकार कथ्य या संवेदना ग्रहण करके उस पर अपनी कल्पनाकी कूँची फेरता है, पर ऐसा करने में इस बात का ध्यान अवश्य रखा जाता है कि कल्पना के समावेश से किसी तरह का विकार उत्पन्न न हो।

रचनाकार अपने मन की भावना अथवा कल्पना से वाचक या श्रोता को आक्रान्त करता है और उसे नई दृष्टि देता है। अन्तर्वस्तु की विशेषताओं के अन्तर्गत पं0 विद्यानिवास मिश्र के निबंधों की अन्तर्वस्तु का विवरण इस प्रकार है।

विषयवस्तु

पं0 विद्यानिवास मिश्र के निबंधों की अन्तर्वस्तु अपने परिवेश, परम्परा और संस्कृति से पूर्ण रूप से जुड़ी हुयी है। गॉव–शहर, साहित्य, समाज, धर्म, दर्शन, राजनीति, भाषा प्रकृति आदि को मिश्र जी ने बड़े ही समीप से निहारा था और उन सबकी अभिव्यक्ति थी उनके निबंधों में परिलक्षित होती है। मिश्र जी के निबंध साहित्य का सिंहावलोकन करने के उपरान्त उसका वर्गीकरण, संस्मरणात्मक और समीक्षात्मक तत्वों के आधार पर किया गया है। जो इस प्रकार है–

सामाजिक संदर्भ

'साहित्य समाज का दर्पण' ऐसा कहा जाता है। पं0 विद्यानिवास मिश्र ने भी अपने निबंधों में परिवेश औरसमसामतयिकता दोनों को अनदेखा नहीं किया है। उनकी उन्मुक्त जीवन शैली के कारण समाज की पूर्ण अभिव्यक्ति उनके निबंधों में परिलक्षित होती है। आज विज्ञान की चकाचौंध में जब चतुर्दिक विकास का डंका पीटा जा रहा है, ऐसे समय में भी भारतीय समाज में किसान अपनी–अपनी दीन–हीन दशा से निजात नहीं पा सकता है जिसका एक उदाहरण 'हो रहा' निबंध में देखा जा सकता है– ''देहातों में वन–महोत्सव की तीसरा वर्ष गुजर जाने के बाद भी ईंधन की समस्या हल करने के लिए अरहर ही काम में आ रही है, जो माघ का जाड़ खेपाने के पहले ही वह खप जाती है, इसलिए विधिवत रसोई था। संरजाम हो नहीं पाता। कचरस और मटर की छीमी पर दिन कटते हैं फागुन चढ़ते–चढ़ते होरहा के रूप में भुने अन्न का सुअवसर प्राप्त हो जाता है।''[2]

पाश्चात्य सभ्यता ने आज भारत के एक वर्ग को इतना आकर्षित किया है कि वर्ग भारतीय संस्कृति को पूर्णतः विस्मृत कर चुका है। उसे यह संस्कृति निकृष्ट लग रही है। जिसे कारण अब यह दृष्टि से देखी जाने लगी है। विदेशो में जाकर शिक्षा ग्रहण करना, वहॉ की आयातित वस्तुओं का उपयोग करना ओर उसकी बड़ाई करना सामान्य लोगों की भी नियति बन चुकी है। पाश्चात्य देशों की बात को आज शान–शौकत के साथ जोड़ा जा रहा है। यह वर्ग भारतीय समाज में एक विशिष्ट सम्मान का अधिकारी बनना चाहता है। लेकिन इसका दुष्परिणम यह है कि यह वर्ग न भरतीयता का पूरी त्याग कर पा रहा है और न ही वह पाश्चात्य सभ्यता का जो लबादा ओढ़े हुए है, उसमें भी वह पारंगत बन पा रहा है। विज्ञान ने एक तरफ आज मानव जीवन को सभ्यता के हर साधन मुहैया करा दिया। पूरा संसार सिमटकर एक घर के अन्दर आ गया है। उसके बावजूद भी मानव मन की अशांति बढ़ती जा रही है, लोगों में आपसी सामंजस्य का स्थान दिखावापने में लिया है। दूसरी के प्रति आदर और सम्मान की बात कौन कहे, रिश्तों का निर्वाह दुष्कर बन चुका है। शहरी लोगों के सम्बन्ध में मिश्र जी लिखते हैं कि– ''शहराती आदमी की न कोई मॉ है न प्रेमिका है, न पुत्र है, न पिता है, क्योंकि वह वीतराग है

यह और भी सही रूप में क्रीतराग है।............

ईमान, सत्य, प्रेम, त्याग, सम्मान इन सभी चीजों का बॅंधा हुआ रोजगार चलाता है।''[3] मिश्र जी पारिवारिक रिश्तों को आवश्यक मानते हैं क्योंकि दूसरे के सुख से सुखी होना ही मानवीय रिश्ते की एक मात्र पहचान है। उनके विचार में परिवार पेड़ की जड़ के समान है। वास्तव में वे जननीजन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी में के हिमायती हैं। गॉव का मन, अंगद की नियति, अग्निश्च, नदी नारी ओर संस्कृति, छितवन की छॉह, तुम चन्दन हम पानी, मेरे राम को मुकुट भींग रहा है आदि निबन्धों को हम सामाजिक कोटि में रख सकते हैं। अपने इन निबन्धों में मिश्र जी ने न केवल सामाजिक समस्याओं को उठाया है, वरन् उनकों सुलझााने का उचित सुझाव भी प्रस्तुत किया है। अतः हम कह सकते हैं कि मिश्र जी ने अपने निबंधों में समाज के सन्दर्भ में जिन पक्षों को अपनी लेखनी का पावन स्पर्श दिया है वे एक स्वस्थ समाज की स्थापना करते हैं।

सांस्कृतिक संदर्भ

समाज और संस्कृति का आदिकाल से ही मधुर संबंध रहा है। संस्कृति पूरी तरह समाज पर ही निर्भर होती है। जिस प्रकार दूध की अनुपस्थिति में मक्खन की कल्पना निरर्थक है उसी प्रकार समाज के बिना संस्कृति का। 'संस्कृति' शब्द संस्कार से संबन्धित है जिसका तात्पर्य परिस्कृत करना संशोधन करना और उत्तम बनाना होता है। मानवीय मूल्यों की स्थापना एवं रक्षा का कार्य संस्कृति ही करती है।समाज की ही तरह संस्कृति भी साहित्य की प्रेरणा एवं संजीवनी है।संस्कृति समाज द्वारा निर्धारित लोक व्यवहार की पद्धति है, जिसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी प्राप्त करती है। संस्कृति का महत्वपूर्ण कार्य यह है कि समाज के विकास के साथ साहित्य को भी विकसित करना है। संस्कृत के निर्माण में मिश्र जी समाज के साथ ही व्यक्ति की भूमिका को भी महत्वपूर्ण मानते है। समाज के पतझड़ और बसन्त सब का वह निरन्तर अवलोकन करती रहती है। समाज की इकाई 'व्यक्ति ' से गुजरते हुए वह एक समूचे समाज एवं परिवेश की पहचान बन जाती है। भारतीय संस्कृति मिश्रजी के रक्त में सदैव प्रवाहित होती रही है विभिन्न मांगलिक अनुष्ठानों एवं दैवीय पूजा पद्धति के जो कार्यक्रम यह संस्कृति अंगीकार किये हुए है, उसी में उसकी मदनीयता निहित है। यह संस्कृति सदैव लोक एवं सृष्टि कल्याण की समर्थ रही है।

'तुम चन्दन हम पानी' निबंध में चन्दन को विश्व भावना का प्रतीक मानते हुए मिश्रजी लिखते हैं कि चन्दन जो भी हो किसी रंग में भी सना हो, वह हमारी विश्वभावना का ही एक शुष्कप्राय खण्ड है, जिसे रसरिक्त करना हमारा सतत् कर्तव्य है....... हमी अर्चनीय देवता है औरहमी अर्चक भक्त, पर यह हमारा विस्तार बोध भी तभी जागता है, जब हम प्रभु को चन्दन और अपने को पानी मानकर चलते हैं। उदाक्त रूपों का आकार सामने रखकर उनसे उनका सार ग्रहण करते हुए जीवन हम अर्जित करते हैं, उनके विश्वहित में विनियोजित करने का संकल्प लेकर चलते हैं।[4]

भारतीय संस्कृति प्राचीन काल से ही विश्वकल्याण की सार्थक रही है। उसने केवल 'स्व' पर जोर कभी नहीं दिया सम्भवतः इसी कारण यहॉ 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना भी व्याप्त थी। यह संस्कृति सदैव सम्पूर्ण के मंगल की कामना करती रही है। मिश्रजी भारतीय संस्कृति द्वारा मान्य विभिन्न त्योहारों में लोक कल्याण की भावना निहित मानते हैं। होली को वे पूरी संस्कृति में अभिव्याप्त प्रक्रिया की चेतना मानते हैं। वहीं नवरात्रि, राम नवमी, श्रीकृष्ण जन्मोत्सव आदि की सार्थकता पर भी अपनी लेखनी चलायी है। भारत में पवित्र त्यौहार महाशिवरात्रि के संबन्ध में वे लिखते हैं कि 'यही शिवरात्रि का सन्देश है कि व्यवहार में बनावटीपन छोड़ो, छल कपट का त्याग करो, सरल सीधे बनो, करूणामय बनी, अपने शरीर को साधना धाम बनाओं, अपने को बालक रूप में प्रस्तुत करो, सहज बनो, विश्वासी बनो, तभी तुम शिव के हो सकोगे।''[5]

भारतीय संस्कृति के प्रत्येक पक्षों को अपनी लेखनी का स्पर्श देने के कारण ही मिश्रजी को भारतीय संस्कृति का पुजारी की संज्ञा दी गयी।

राजनीतिक सन्दर्भ

प्रत्येक रचनाकार अपने युग के प्रभाव से प्रभावित होता है। उसके युग का प्रभाव उसकी रचना में परिलक्षित होता है। उसके युग का प्रभाव उसकी रचना में परिलक्षित होता है। आजका निबंधकार बड़ा सजग है। देश–परदेश में होनेवाले राजनीतिक हलचल उसे झकझोरते है।

पं0 विद्यानिवास मिश्र के निबंध में किसी राजनीतिक के विचारधारा का प्रधान्य नहीं है किन्तु इतना अवश्य है कि वे राजनीतिक गतिविधियों पर दृष्टि अवश्य गड़ाए रखते हैं। वह राजनीति से एकदम उदास प्रतीत नहीं होते। मिश्रजी का निबंधकार उत्तरोत्तर अग्रोन्मुख होता रहा है। मिश्रजी के निबंधों में सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक राजनीति, धार्मिक राजनीति, देश की राजनीति आदि पर उनके विचार यथास्थान मिलन जाते हैं। इतना अवश्य है कि स्वतंत्र राजनैतिक लम्बे–लम्बे निबंध लिखने की उनकी वृत्ति नहीं है। 'गऊचोरी' धनवा पियर भइले मनवा पियर भइले' (छितवन की छॉह 'नया दौर, आंगन की पंछी, बंजारा मन) हिन्दी बनाम राजनीति, 'तटस्थता की अब गंजाइश नहीं, अंधी जनता और लंगड़ा जनतन्त्र, (बसन्त आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं) राजनीति और मूल्य आदि निबन्धों को राजनीतिक निबंधों की कोटि में रखा जा सकता है। राजनीति के बदलते हुए परिवेश में मिश्रजी साहित्य पर राजनीतिक प्रभाव को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि आज की जो गवर्नमेण्ट है वह दूसरे प्रकार की है राजनीति उससे प्रभावित नहीं होती है, लेकिन साहित्य राजनीति से प्रभावित होता है। राजनीति उससे प्रभावित हो, न हो, इसकी चिंता उसे नहीं है। लेकिन राजनीति प्रभावित होती हैं निष्ठावानों से प्रभावित होती है, प्रभावित हुई। उसी के अभाव में राजनीति प्रभावित नहीं हुई और राजनीति ने साहित्य को अधिक से अधिक एक सनक के रूप में लिया। साहित्य की बांधकता को नेताओं ने पहचाना नहीं।''[6]

मिश्र जी राजनीति के कारण समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए चतुर्दिक प्रयास की सलाह देते है। चारों तरफ जब उसकी समाप्ति का एक साथ ढोल पीटा जायेगा तो इस दानवीय शक्ति को अवश्य पनाह लेना पड़ेगा। इसलिए वे प्रश्न उठाते हैं कि ''सबको न्याय दीजिए, गरीब से गरीब को बिना घर–द्वार बेचे अदालत से न्याय मिले, इसकी व्यवस्थ कीजिए। चाहे जिस भी समुदाय का हो उसकी शिक्षा, उसे स्वास्थ्य, उसके आवास के लिए एक सी चिन्ता कीजिए और उसकी व्यवस्था कीजिए। सबको प्रतीति हो जायेगी कि आपकी दृष्टि में कोई हिन्दू–मुसलमान नहीं है, सब बस केवल हिन्दुस्तानी हैं। न कोई अनुकम्पनीय है, न कोई आदरणीय न किसी से डरना है, न किसी को डराना है। हमारे राजनीतिक व्यवहार में यह क्यों नहीं आया।''[7]

अन्त में हम कह सकते हैं कि मिश्रजी ने केवल राजनीति को आधार बनाकर निबंधों की रचना नहीं की, फिर भी देश, काल और वातावरण के कारण उनकी पावन लेखनी का संस्पर्श राजनीति से भी होता रहा। उन्होंने अपने निबंधों में राजनीतिक मूल्यों का निरन्तर ह्रास, जनता की दर्गतिपूर्ण स्थिति, शोषक वर्ग का बढ़ता अत्याचार विभिन्न 'वादो' को जन्म, राजनीतिज्ञो की दो–मुँही बाते आदि ज्वलन्त समस्याओं को अपने निबंधों में स्थान दिया है।

धार्मिक संन्दर्भ

पं0 विद्यानिवास मिश्र जी धर्म में गहरी आस्था थी। ईश्वर की सत्ता में उनका पूर्ण विश्वास था। उन्होंने अपने निबन्धों में धर्म, संस्कृति, भक्ति, साकार, निराकार मानवीय तथा मानयोग, धर्म, अधर्म, सम्पूर्ण धर्म आदि शब्दों के उनेक प्रयोग किये हैं उन्होने हिन्दू धर्म, जीवन में सनातन की खोज नाम का खोजपूर्ण ग्रन्थ लिखा है। उनहोंने धर्म सम्बन्धी एक मानवीय मूल्य नामक चिंतन परक निबन्ध संचारिणी में लिखा है। बाकी धर्म से संबन्धी कुढ़ विचार अन्य निबन्ध संग्रहों में स्थान–स्थान पर दिखाई देते हैं।

धर्म को समझाते हुए मिश्रजी कहते हैं– ''धर्म'' एक गलत अनुवाद के कारण अवमूल्यन का शिकार हो गया है इसे रिलीसन का प्र्याय बनाकर इसका मूल्य घटा दिया गया। यही नहीं, जो अपने को स्पष्ट रू‍प से इस्लाम का मजहब मानते हैं, वे तो मजहब से परे एक धर्म की बात करते हैं और वह धम्र उन्हें गीता में मिलता है, पर हिन्दुस्तान का आदमी धर्म की बात को अस्पृश्य मानने लगा है। उसके भीतर एक चोर बैठ गया है कि धर्म विज्ञान का विरोधी है, प्रगति का विरोधी है, मानव को ही

बनाता है एक झूठी खाम–खयाली में डुबाये रखता है, वह मनुष्य को उसके यर्था से काटता रहता है, वह हमेशा इस लोक का तिरस्कार करता है, परलोक की चिंता करता है, मनुष्य की स्वाधीनता में अनावश्यक हस्तक्षेप है, वह केवल बाहरी आडम्बर है वह हेय है।[8]

उक्त मानसिकता के कारणों को स्पष्ट करते हुए मिश्र जी कहते हैं– ऐसा मानने के पीछे दो प्रकार की परिस्थितियॉ हैं, एक तो अपने ही समाज की विडम्बना से पैदा हुई है, दूसरी उत्पन्न हुई है, उत्पन्न हुई है ओढ़ी हुई पश्चिमी मानसिकता से। अपने समाज की विडम्बना यह है कि धर्म के नाम से अधिकांश जो संस्थान बने हैं, वे धर्म के मूल भाव को ही उन्मूल करने में लगे हैं, धर्म का मूलभाव है निष्कपट व्यवहार आर्जव, सब में अप्रतिहत विश्वास और इन संस्थानों की दशा तुलसी के शब्दों में यह है कि– करहु विमल हिय सबहिं हृदय हरि, हौं समुझौं समुझावौं पै निज उर अभिमान मोह मद खल मंडली बसौवौं।''[9]

वैसे तो मिश्र जी अपने कर्तव्य पालन को ही धर्म मानते थे। अपने कर्तव्य से विमुख होना अपने धर्म से विमुख होना है। उनके लिए अव्यवछिन्न व्यवहार ही धर्म है। आज धर्म के क्षेत्र में बढ़ते दिखावेपन से मिश्रजी दुःखी थे, क्योंकि धर्म दिखावेपन के लिए नहीं वरन् वह तो स्वभाव है, वह तो जीवन के लय और ताल में अनुपात की आकांक्षा रखता है। मिश्रजी के धर्म सम्बन्धी निबंध निम्नलिखित है। अयोध्या उदास लगती है (गॉव का मन) परम्परा के द्वारा से आधुनिकता (नैरन्तर्य और चुनौती), देश की पहचान अग्निरथ, पार्थिव धर्म (आंगन की पंछी और बनजारा मन) बौद्धावतारे (तुम चन्दन हम पानी) इत्यादि। कहना न होगा कि इन धर्म सम्बन्धी निबन्धों में मिश्र जी का धर्म विषयक आस्था और विचार स्पष्ट व्यक्त होता है इससे निबन्धकार मिश्रजी के धार्मिक व्यक्तित्व की छाप उभरती है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मिश्रजी के निबंध अन्तर्वस्तु की दृष्टि से समग्रता के संवाहक है। सामाजिक रूढ़ियों से लेकर आधुनिकता का नवीन वातावरण और प्राचीन संस्कृति से लेकर वर्तमान में उसकी दशा–दुर्दशा आदि सब पर सम्यक प्रकाश इन निबन्धों में डाला गया है। वर्तमान की उथली राजनीति एवं दिखावेपन के वर्णन के साथ ही धार्मिकता, आस्तिकता एवं धम्र की आड़ में चलती ढाल पर भी चर्चा की गयी है। अपने निबंधों में विभिन्न पक्षों पर विचार करते हुए जहॉ मिश्रजी विशेष गंभीर दिखाई देते हैं, वहीं भाषा और संकृति जैसे ततवों का निरादर होते देख वे अगिया बैताल बन जाते हैं, और उनका आत्मिक तेज एवं ब्राह्मणत्व दोनों जाग उठता है। उनके निबंधों में यही आत्मविश्वास एवं सम्यक दृष्टि सर्वत्र विद्यमान है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *विद्यानिवास मिश्र–मेरे राम का मुकुट भीं रहा है, नेशनल पेपर बैक्स नयी दिल्ली 11002, प्रथम संस्करण 2004*
2. *विद्यानिवास मिश्र– नदी नारी और संस्कृति, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, संस्करण, 1992*
3. *संचारिणी–विद्यानिवास मिश्र, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करणप, 1937,*
4. *विद्यानिवास मिश्र तुम चन्दन हम पानी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली प्रथम संस्करण, 1657*
5. *विद्यानिवास मिश्र, भारतीयता की पहचान, वाणी प्रकाशन, दिल्ली संस्करण, 1989*
6. *विद्यानिवास मिश्र छितवन की छॉह, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1952*
7. *आलोचनात्मक ग्रन्थः–डॉ0 धर्मपाल, मैनी मानव मूल्य परक शब्दावली का विश्वकोश, सरुप एण्ड सन्ज, दरियगंज, नई दिल्ली, प्र0सं0–2005।*

पाद टिप्पणी

1. *मैनी, डॉ0 धर्मपाल (सं.),मानव मूल्य–परक शब्दावली का विश्वकोश, सरू एण्ड सन्ज, दरियागंज, नई दिल्ली, प्र0 सं0– 2005, पृ0 सं0– 1629।*
2. *छितवन की छॉह–विद्यानिवास मिश्र, पृष्ठ–115*
3. *तुम चन्दन हम पानी, विद्यानिवास मिश्र (पूर्णमदः पूर्णमिदम, पृष्ठ–107।*
4. *तुम चन्दन हम पानी, विद्यानिवास मिश्र, पृष्ठ–128–129*
5. *भारतीय की पहचान (भारतीय आराध्य शिव के नाम) विद्यानिवास मिश्र, पृष्ठ 64।*
6. *मेरे राम का मुकुट भीग रहा है (मुकुट मेखला और नूपुर) विद्यानिवास मिश्र, पृष्ठ–4*
7. *नदी नारी संस्कृति, विद्यानिवास मिश्र, पृष्ठ–121*
8. *संचारिणी, पं0 विद्यानिवास मिश्र, पृष्ठ–35।*
9. *संचारिणी, पं0 विद्यानिवास मिश्र, पृष्ठ, 35*